ज्ञान तत्व अंक 140

(क) लेख, भारतीय राजनीति में लोकतंत्र ।

(ख) कार्यालयीन प्रश्नों के उत्तर ।

(ग) के.जी. बालकृष्ण पिल्लै, गीताभवन, पेरूरकटा, केरल के द्वारा मेरे द्वारा लिखा गया लेख मुस्लिम गुलामी में धर्म ने समाज को तोड़ा। इस पर प्रश्न और मेरा विस्तृत उत्तर ।

(घ) श्री महेश भाई विजयीपुर गोपालगंज, बिहार।द्वारा विचार लंगड़ा होता है और साहित्य अंधा। इस पर प्रश्न और मेरा उत्तर ।

(च) श्री बैद्यनाथ चौधरी, बेगूसराय बिहार। का प्रश्न और मेरा उत्तर ।

(छ) आचार्य पंकज, राष्ट्रीय अध्यक्ष लोक स्वराज्य मंच। द्वारा प्रश्न और मेरा विस्तृत उत्तर ।

(ज) संविधान में उद्देश्यिका और उसका दुरूपयोग।

(झ) संविधान मंथन सभा की अपील एवं सूचनाएं।

(क) **भारतीय राजनीति में लोकतंत्र**

प्रत्येक व्यक्ति का यह स्वाभाविक चरित्र होता है कि वह स्वयं तो अधिकतम स्वतंत्र रहना चाहता है और दूसरों को अधिकतम अपने अनुसार चलाना चाहता है। यह सोच प्रायः सब जगह पाया जाता है किन्तु तानाशाही सोच वालों में अपेक्षाकृत अधिक और लोकतांत्रिक सोच वालों में अपेक्षाकृत कम होता है।

भारतीय राजनीति अपने प्रारम्भिक काल से ही इस बीमारी की शिकार रही। प्रारम्भिक काल में ही जब हिन्दू कोड बिल संसद में पारित नही हो सका तो अम्बेडकर जी ने पद से त्यागपत्र की धमकी दी और नेहरू जी ने दूसरे तरीके से हिन्दू कोड बिल पास करवा दिया। समाज के लिए क्या उचित है इसके निर्णय का अधिकार संसद से हटकर नेहरू अम्बेडकर ने अपने पास रख लिया। उदाहरण दिया जाता है कि गांधी जी ने भी तो कई बार वैसा ही किया था, किन्तु हम दोनों की परिस्थितियों की तुलना नहीं करते कि गांधी जी का संचालन युद्ध समय में था और नेहरू जी का युद्ध रहित समय में।

लोकतंत्र की अवधारणा लोकतांत्रिक तंत्र की रही है। भले ही स्वतंत्रता के तत्काल बाद ही उस अवधारणा को लोक नियुक्त तंत्र में बदलने के प्रयत्न शुरू हो गये। लोकतंत्र की मूल अवधारणा में लोक समाज शब्द का प्रतिनिधित्व करता था और प्रशासन तंत्र का। सोच यह रही कि संसद लोक का प्रतिनिधित्व करेगी और संसद का नियंत्रण तंत्र पर रहेगा। इस तरह लोकतांत्रिक तंत्र की अवधारणा पूरी हो जायेगी। यह अवधारणा पूरी भी हो सकता थी यदि लोकतंत्र की अवधारणा को परिवार गांव जिला प्रदेश से राष्ट्र तक विकसित होने की छूट दी जाती है। किन्तु न संविधान बनाने वालों की मनोवृत्ति में लोकतंत्र था न ही उस संविधान के आधार पर लोकतंत्र स्थापित करने वालों के मन में ही ऐसा कुछ था। संसद से लोक प्रतिनिधि के रूप में तंत्र पर नियंत्रण की अपेक्षा की गयी थी, किन्तु हुआ इसके ठीक विपरीत कि मंत्रीमंडल स्वयं ही तंत्र बन बैठा और उसकी नियंत्रक की भूमिका तंत्र के प्रतिनिधि में बदल गयी। इस तरह लोक की भूमिका सिमटकर मंत्रिमंडल तक आ गयी और वहीं तंत्र का नियंत्रक भी बन गया। इस तरह भारत में लोकतंत्र का अर्थ लोकनियंत्रित तंत्र की खानापूर्ति हो गयी।

भारत में लोकतंत्र को जीवित रखने और मजबूत करने का दायित्व राजनीतिक दलों ने लिया है। भारतीय राजनीति की गम्भीर समीक्षा करने की आवश्यकता है कि लोकतंत्र को प्राणवायु प्रदान करने का बीड़ा उठाये राजनीतिक दलों का लोकतंत्र पर कितना विश्वास है। इन दलों की स्वयं की राजनैतिक पृष्ठभूमि को टटोलने की आवश्यकता है। भारत के सभी राजनैतिक दलों की दलीय पृष्ठभूमि में लोकतंत्र का आकलन करें तो पायेंगे कि सिर्फ जनता दल यूनियन ही एकमात्र ऐसा राजनैतिक दल है जिसमें आन्तरिक लोकतंत्र हो। मैं पहले ही लिख चुका हूँ कि सम्पूर्ण भारत में

जीवन पद्धति के रूप में तो लोकतंत्र की जड़े पहले ही काट दी गयी थी। शासन पद्धति के रूप में लोकतंत्र स्थापित हुआ जिसका स्वाभाविक परिणाम होता है अव्यवस्था। यदि हम भारत के सभी राजनैतिक दलों की समीक्षा करें तो पायेंगे कि जनता दल यू ही एकमात्र ऐसा दल है जिसमें अव्यवस्था व्याप्त है जो प्रमाणित करती है कि लोकतंत्र समाप्त नही हुआ है, किन्तु संघ परिवार पूरी तरह प्रयत्नशील है कि भाजपा से अव्यवस्था समाप्त हो जाये और अव्यवस्था समाप्त करने के लिए उसमें से लोकतंत्र समाप्त करना आवश्यक है जो अभी दूर की बात दिख रही है।

कांग्रेस पार्टी भारत की सबसे बड़ी लोकतांत्रिक पार्टी है जिसमें धीरे–धीरे अब लोकतंत्र समाप्त घोषित मान लिया गया है। मायावती जी, मुलायम सिंह यादव जी, लालू प्रसाद जी, जय ललिता, करूणानिधि आदि के साथ तो दल कहना भी लोकतंत्र का अपमान करना है, क्योंकि ये सभी तो व्यक्तिगत गिरोह मात्र हैं जिनका लोकतंत्र से न प्रत्यक्ष कोई सम्बन्ध है न परोक्ष। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि ये दल लोकतांत्रिक दलों को धक्का देकर लगातार आगे बढ़ रहे हैं। नीतिश कुमार जी ने अवश्य ही बीच में घुसने का प्रयास किया है जो अभी पता नही कि कब तक जीवित रह पाता है।

वामपंथ पर हम अलग से विचार करें। साम्यवादी एकमात्र ऐसे दल के रूप में स्थापित हुए हैं जिनमें लोकतंत्र घोषित नहीं है, किन्तु और सबसे अधिक है क्योंकि वामपंथ भले ही लोकतंत्र का ढोंग न करे किन्तु उसके पोलित ब्यूरो में तो पूरा–पूरा लोकतंत्र है। सच्चाई तो इससे भी आगे बढ़कर है कि वामपंथ ने अपने आन्तरिक दलीय तंत्र में लोकतंत्र को जीवन पद्धति के रूप में जीना सिख लिया है। चार दलों का गठबंधन कितने आराम से इतने वर्षो से सफलता पूर्वक काम कर रहा है। यही तो है लोकतांत्रिक जीवन पद्धति। यदि साम्यवादी भी अपने राजनैतिक जीवन में लोकतंत्र न लाकर अपने राजनैतिक शासन में लोकतंत्र लाने की कोशिश करते तो अब तक टूट बिखर जाते।

भारत में लोकतंत्र के यथार्थ का भयावना चित्र स्पष्ट है। साम्यवादियों की लीक भी बदलने लगी है। वहां भी अव्यवस्था अपनी शुरू है। जनता दल यू तो धीरे–धीरे कमजोर ही हो रहा है। भारतीय जनता पार्टी में जल्द ही लोकतंत्र छोड़ चुके है। प्रश्न उठता है कि लोकतंत्र कि दिशा में बढ़ते है तो उनके अन्दर आन्तरिक व्यवस्था लड़खड़ा कर अव्यवस्थ्झा में बदल जाने का खतरा है जिसका परिणाम है असफलता। लेकिन यदि सफलता के लिए इसीतरह ऐसे लोग मजबूत होते गये जिन्हें लोकतंत्र पर न कभी विश्वास रहा है न भविष्य में सम्भावना है तो ऐसे व्यक्तियों से लोकतंत्र कितना जीवित रहेगा। हम पचहत्तर में लोकतंत्र का भविष्य देख चुके है जब अपनी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा पर आये खतरे को दूर करने के लिए इन्दिरा जी ने लोकतंत्र का घूंघट हटाने में जरा भी देर नही की थी। वह तो परिस्थितियॉ ऐसी बनी कि इन्दिरा जी को धोखा हो गया और लोकतंत्र बच गया।

अब स्पष्ट हो चुका है जिसे स्वयं की लोकतांत्रिक जीवन पद्धति पर विश्वास नहीं है तथा जिसने अपने दल के अन्दर भी कभी लोकतंत्र पर विश्वास नहीं किया वह भविष्य में क्या लोकतंत्र को समझौता स्वाभाविक ही है कि ये सब लोग मजबूरी में भले ही लोकतंत्र पर विश्वास नहीं है। वस्तुस्थिति यह है कि लोकतंत्र इन सबके लिए सत्ता का साधन मात्र है जिसे उतार फेंकने में ये लोग किंचित भी देर नहीं लगाएंगे। ऐसी स्थिति में इनमें से किसी भी दल या व्यक्ति से कोई उम्मीद व्यर्थ है। उस समय तो और भी व्यर्थ है जब लोकतंत्र से हटना आज की राजनैतिक मजबूरी बन चुका है।

ऐसे समय में आशा की सिर्फ एक ही किरण बची है कि पुनः सतहत्तर दुहराया जाय। अर्थात् समाज राजनीतिक दलों को अस्वीकार करके एक नई संवैधानिक व्यवस्था का आंदोलन करें जो लोकतंत्र की सम्पूर्ण परिभाषा को ही लोक नियुक्त से बदलकर लोक नियंत्रित कर दे। यदि वह प्रयास सफल हो जाय तो लोकतंत्र शासन पद्धति न रहकर जीवन पद्धति के रूप में विकसित होना शुरू कर देगा। इस प्रयत्न से परिवार, गांव और जिले स्वायत्त होंगे और लोकतंत्र लोकस्वराज्य की दिशा मे बढ़ जायेगा।

यदि कोई गम्भीर प्रयत्न नहीं हुआ तो लोकतंत्र का भविष्य भारत में तो निश्चित रूप से खतरे में है अर्थात् एक तरफ कुंआ रूपी अव्यवस्था तथा दूसरी तरफ खाई रूपी तानाशाही। बीच का मार्ग समाज ही निकाल सकता है जो उसे निकालना चाहिए।

(ख) कार्यालयीन प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न– नवभारत तीन सितम्बर के प्रथम पृष्ठ के मुख्य समाचार में बताया गया है कि भारत की अधिकांश राज्य सरकारों ने ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के विरूद्ध यह कहकर रिपोर्ट की है कि इससें गांवों में श्रम मूल्य बढ़ने से कृषि उत्पादन पर बुरा असर पड़ रहा है। इससे भी बड़ा आश्चर्य यह है कि केन्द्र सरकार ने इस रिपोर्ट के महत्व को स्वीकार करते हुए एक जांच टीम बनाने की घोषणा की है, आप इस संबंध में क्या सोचते हैं?

उत्तर– अपने पचपन वर्षो के रिसर्च और पांच वर्षो के प्रशासनिक अनुभव के बाद ही मैंने यह घोषित किया कि वर्तमान संवैधानिक व्यवस्था शरीफों, गरीबों, श्रमजीवियों के विरूद्ध अपराधियों, बुद्धिजीवियों तथा पूंजीपतियों का एक राजनैतिक षड्यंत्र है। मैंने जो कुछ टिप्पणी की वह सम्पूर्ण भारत में एकमात्र ऐसी गंभीर टिप्पणी थी। मैंने लिखा था कि कृत्रिम ऊर्जा मूल्य नियंत्रण शिक्षित बेरोजगारी दूर करना तथा न्यूनतम श्रम मूल्य वृद्धि की सरकारी योजना तीन ऐसे गुप्त षड्यंत्र है जो गरीबों और श्रमजीवियों के विरूद्ध घोषण का सशक्त माध्यम है। मैंने खुला आरोप लगाया था कि सभी साम्यवादी या वामपंथी इन तीनों योजनाओं का पूरा–पूरा समर्थन करते हैं। मैंने यह भी लिखा था कि श्रमशोषण और आर्थिक असमानता के विस्तार में साम्यवादी पूंजीवादियों की अपेक्षा अधिक घातक है, क्योंकि इनका आक्रमण एक मीठा जहर है जो श्रमजीवियों और गरीबों के नाम पर उनके शोषण का मार्ग प्रशस्त करती रहती है।

मुझे आश्चर्य हुआ जब यू.पी.ए. सरकार ने वामपंथियों की सामान्य सी मांग पर ही ग्रामीण न्यूनतम रोजगार गारंटी लागू कर दी। मैंने ज्ञानतत्व अंक एक सौ दो में ही एक पूरा लेख लिखकर इस योजना की प्रशंसा की थी। मैंने पृष्ठ आठ पर लिखा कि स्वतंत्रता के बाद पहली बार श्रम के साथ न्याय के प्रयत्न शुरू हुए। मैंने यह भी माना था कि इस योजना शुरू करने में बुद्धिजीवियों के साथ धोखा हुआ है इसलिए शीघ्र ही नये षड्यंत्र होंगे। मुझे आश्चर्य हुआ था कि वामपंथी कैसे इस अग्रणी भूमिका तो वामपंथ की ही रही है। किन्तु ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना को लागू कराने में सबसे आगे–आगे वही लोग रहे।

मेरी आशंका सच सिद्ध हुई। वामपंथियों को भी भूल का ज्ञान बाद में हुआ। सोनिया जी और मनमोहन सिंह इस संबंध में कच्चे खिलाड़ी थे। इसलिए इस योजना के बेअसर करने की बौद्धिक तिकड़म भिन्न तरीके से शुरू हुई।

1– मुद्रास्फीति के साथ इसे न जोड़ना। नकली श्रम मूल्य वृद्धि घोषित हो रही है, परन्तु ग्रामीण रोजगार गारंटी मूल्य दो वर्षो में संशोधित नहीं हुए। इस तरह यह योजना पूरे भारत में लागू भी हो जाएगी और निष्प्रभावी ही हो जायेगी क्योंकि तीन वर्षो में मुद्रास्फीति साढ़े अट्ठारह प्रतिशत बढ़ जाएगी और ग्रामीण रोजगार गारंटी मूल्य स्वतः बराबर हो जाएगा।

2– शिक्षा पर बजट वृद्धि। शिक्षा पर बजट बढ़ाकर 6 प्रतिशत कर दिया गया है और पूरा जोर दिया जा रहा है कि वह बजट पूरा का पूरा खर्च हो। मनमोहन सिंह सोनिया जोड़ी भी शिक्षा पर बजट सहमत हो गई है। इस बजट वृद्धि के आधार पर रोजगार गारंटी के सामने संकट खड़ा किया जाएगा।

3– वामपंथी भी अब इस योजना के दुष्परिणाम समझ चुके हैं। इसीलिए वे भी चुप हैं। एक बार भूल हो गई तो अब बार–बार करना ठीक नही।

4– राज्यों द्वारा कृषि पर दुष्प्रभाव का प्रचार। इस दुष्प्रभाव के होने में वामपंथी भी शामिल है।

इस तरह षड्यंत्र के पाप मं सब शामिल हो चुके है। मैंनें इस विषय में कई अर्थशास्त्रियों से विचार किया। कोई इस पर मुंह खोलने या लिखने को तैयार नहीं। सभी अन्दर–अन्दर खुश है। किसान लावी भी इस प्रस्ताव से खुश है। कृषक लावी श्रम मूल्य वृद्धि का समर्थन करके उत्पादन के मूल्य निर्धारण की मांग न करके श्रम मूल्य रोकने और कृत्रिम ऊर्जा मूल्य घटाने का वर्चस्व है।

मैंने पूर्व में ज्ञानतत्व अंक एक सौ छः के पृष्ठ सोलह पर कुंवर यादवेन्द्र सिंह राणा के प्रश्न के उत्तर में तथा अंक एक सौ ग्यारह के पृष्ठ पच्चीस पर ताराचन्द्र जी के प्रश्न के उत्तर में इस योजना को क्रांतिकारी कदम माना है। अब मूझे विश्वास हो गया है कि वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था फिर से अपनी श्रमशोषण की पुरानी पटरी पर लौट आई है। अब इस योजना को पूरी तरह बेअसर करने का षड्यंत्र हो चुका है। चालाक वामपंथियों ने अपनी भूल समझ ली है और नासमझ मनमोहन, सोनिया जोड़ी को इस योजना के दुष्परिणाम समझा दिये गये हैं। इस योजना को पूरी तरह बेअसर कर दिया जाएगा और हम आप सिर्फ चिल्लाते ही रह जाएंगे।

इस षड्यंत्र के विरूद्ध जनजागरण आज की आवश्यकता है। चाहे हम यह जागरण न्याय के निमित्त करें तथा शान्ति के निमित्त किन्तु करना तो चाहिए ही। मुझे खुशी है कि श्रम शोषण मुक्ति अभियान ने इसके विरूद्ध जन जागरण शुरू किया है और आगामी सत्रह अक्टूबर दो हजार सात को जन्तर–मन्तर पर धरना–प्रदर्शन की घोषणा की है। हम आप सबका कर्तव्य है कि इस जनजागरण को सफल बनाने का प्रयत्न करें। इस संबंध मे ंविस्तृत लेख अगले अंक में जाएगा।

पत्रोत्तर

(ग) – के.जी. बालकृष्ण पिल्लै, गीताभवन, पेरूरकटा, केरल–695005

प्रश्न– ज्ञानतत्व 15–31 अगस्त 07 अंक में आपने व्यक्ति, परिवार और समाज शीर्षक अपने लेख में लिखा है...... कई सौ वर्षो की मुस्लिम गुलामी में धर्म ने समाज को तोड़ा।

1– यदि हम ईसवी दसवीं सदी से सोलहवां सदी के मुस्लिम शासन को भारत की गुलामी मानें तो भारत के आजादी का प्रथम संग्राम हम किसे मानें?

2– सच्चर कमेटी की सिफारिशों पर अमल करने की दिशा में भारत सरकार जो कदम उठा रही है वह भारतीय समाज में संतुलन बढ़ाएगा या असंतुलन?

उत्तर– भारत की आजादी का प्रथम संग्राम किसे मानें इस संबंध में कोई निश्चित धारणा नहीं है। इतिहास की अनिश्चित धारणाओं में समय खर्च करना मेरा विषय भी नहीं है। समाज की समाज विरोधियों से मुक्ति का कोई संग्राम दो–चार सौ वर्षो में हुआ भी नहीं। भारत को राष्ट्रीय स्वतंत्रता तो मिली किन्तु गंगा, शंकर जी की जटा में उलझ गई। अर्थात् भारत की स्वतंत्रता समाज तक न आकर संसद तक ही आ पाई। अब उस स्वतंत्रता को राष्ट्र से निकालकर समाज तक लाने का स्वतंत्रता संघर्ष शुरू करने की तैयारी चल रही है। राष्ट्र और समाज बिल्कुल भिन्न विषय हैं। इन पर पृथक विचार होना चाहिए।

इस्लाम में धर्म की व्याख्या करते समय संगठन को गुणों की अपेक्षा अधिक प्राथमिकता दी जाती है। जब धर्म गुणों के रूप में स्थापित होता है तब समाज को मजबूत करता है और जब संगठन के रूप में स्थापित होता है तब समाज को तोड़ता है। इस्लाम संगठन के रूप में आया और आज तक उसी रूप में है। धर्म के संगठनात्मक स्वरूप के राजनीति के साथ सामंजस्य ने ही सच्चर कमेटी को जन्म दिया। यह सच है कि प्रगति की स्वतंत्र दौड़ में मुसलमान सवर्ण हिन्दुओं से पीछे चल रहा है और लगातार पिछड़ने का क्रम जारी है। दूसरी ओर फतवा जारी करने, आतंक फैलाने, धार्मिक कट्टरवाद, एक से अधिक विवाह करने, विदेशी झगड़ों में सक्रिय होने, आबादी बढ़ाने आदि में वह हिन्दुओं से बहुत आगे है। आदिवासी और हरिजनों के पिछड़ने का दोष हिन्दू समाज का है जिन्होंने उन्हें रोक रखा। ऐसी कोई रोक मुसलमानों के साथ नहीं है। पूरे भारत की जेलों में आतंकवाद के नाम पर गिरफ्तार अपराधियों की संख्या तीन चौथाई है। इसका उत्तर भी सच्चर कमेटी को खोजना चाहिए। एक निर्लज्ज व्यक्ति ने तो उल्टा मुझसे ही प्रश्न कर दिया कि भारत की जेलों में जो लोग बन्द हैं उनमें तीन–चौथाई मुसलमान हैं। यह मुसलमानों के साथ अत्याचार है। मुझे लगा कि आम मुसलमानों को ऐसे तर्क समझाकर उन्हें गुमराह करने का लगातार प्रयत्न जारी है।

मै समझता हूॅ कि सच्चर समिति एक राजनैतिक मजबूरी के अन्तर्गत बनाई गई है और भाजपा हिन्दू धर्म का राजनैतिक दुरूपयोग बन्द कर दे तो आसानी से इस्लाम को राजनैतिक विशेष कृपा

से हटाया जा सकता है। किन्तु न भाजपा का स्वार्थ छूटेगा न कांग्रेस की मजबूरी और न समाज का असंतुलन।

(घ) – श्री महेश भाई विजयीपुर गोपालगंज, बिहार।

प्रश्न– विचार लंगड़ा होता है और साहित्य अंधा।

भारत में साहित्य की दशा और दिशा शीर्षक से ज्ञानतत्व के अंक 135 में छपा संपादकीय पढ़ा। उपरोक्त पंक्तियों में व्यक्त आपके चिन्तन–मंथन और इससे निकले निष्कर्ष को समझने की कोशिश करता कि इस लेख के प्रथम वाक्य पर ही ध्यान केन्द्रित हो गया साहित्य कर देखता हॅू तब मूझे लगता है कि लंगड़ा विचार अंधे साहित्य के कंधे पर बैठकर ही क्या संदेश देगा जिससे वह समाज का दर्पण स्वयं को साबित करने में समर्थ हो सके? मुझे लगता है कि किसी विचारक के चिन्तन और इससे निकले विचार की नये सिरे से पड़ताल की जानी चाहिए। क्योकि कोई भी विचार बनकर चिन्तन मंथन से छनकर तभी संवाद के लिए निकलता है जब उसे लगता है कि विमर्श के लिए अब इसको दूसरों के पास भी जाना चाहिए। क्या ऐसा ही नहीं होता?

अब पड़ताल यह की जानी चाहिए कि आखिर यह विचार स्वयं में क्या है, क्यों इसे संपादित्त होने की आवश्यकता महसूस होती है? मुझे लगता है निरीक्षण के कम में यह साफ झलकता है। परिवेश, परिदृश्य और परिस्थितियों की परस्पर होने वाली प्रतिकियाओं तथा इनकी अनुकियाओं के दबाव से संवेदनशीलता पैदा होती है। यही संवेदनशीलता विचारशीलता पैदा करती है जिसकी अन्तर्वस्तु होती है चिन्तन और मंथन। यही चिन्तन, मंथन अन्र्तबन्ध की तलाश में विचार बन कर फूट पड़ता है। जो विचार इतनी लम्बी यात्रा तय करता है वह लंगड़ा कैसे हो सकता है? यह हुआ एक प्रश्न?

साहित्य सृजन एक कला है। कला की अन्तर्वस्तु होती है संवेदनशीलता। साहित्य ही नहीं ललित कला, मूर्तिकला, चित्रकला, पेंटिग कला, नृत्यकता या किसी प्रकार की अन्य कलाएं हो संवेदनशील सर्जनात्मकता ही इनकी अभिव्यक्तियां होती है। उधार का विचार साहित्य सृजन भ्रामक परिवेश परिदृश्य तथा परिस्थितियों का निर्माण करता है। जैसा कि हम सब लोग भी परस्पर संवाद के खातिर ही विचार प्रकट करते हैं। विचार का संवेदनशील रचनात्मक पक्ष तभी प्रकट होता है जब संवाद की अर्न्तवस्तु सामने वाला भी उसी आन्तरिक फ्रीक्वेंसी अर्थात ध्वनि तरंगों पर ग्रहण करता है जिस फ्रिक्वेंसि पर दूसरी बाते हैं अर्थात् संवाद की अन्तर्वस्तु का व्यक्त विचार सुनने वाला पूर्वाग्रह पूर्वक occupiedmind से सुनकर समझने की कोशिश करता है तब वह अपनी बात अपने विचार दुराग्रही तर्को के द्वारा बोझिल बना देता है और विचार में भटगांव आ जाता है, नतीजा होता है कि संवाद की संवेदनशील रचनात्मकता मृत परिणाम कारक हो जाती है। जैसा कि आपने भी इस तथ्य का खुलासा करते हुए लिखा है कि आदर्श स्थिति वह होती है जब विचारक और साहित्य दोनों ही स्वतंत्र हों। यहां आदर्श के बदले वास्तविक शब्द उपयुक्त होना चाहिए। क्योकि आदर्श आदर्श शब्द एक ऐसा शब्द है जो सिर्फ नकल को तरजीह देकर एक नये प्रकार के संघर्ष को न्यौता देता है जो प्रयत्न करने वाले को हमेशा नाप–जोख करने में ही व्यस्त रखता है तथा उस स्थिति तक नही पहुंच पाने पर वह प्रयत्नहीन भावना का शिकार हो जाता है। सफलता असफलता का अर्न्तद्वन्द्व उसकी आन्तरिक पीड़ा का कारण बन कर रह जाता है।

प्रतिबद्धता किसी प्रकार की क्यों न हो भयानक परिणामकारी होती है। सच तो यह है कि यदि विचारक का चिंतन, मंथन संवेदनशील है तो वह रचनात्मक होगा ही। साथ ही यदि साहित्यकार संवेदनशील होगा तब उसकी रचनाएं भी रचनात्मक प्रभावकारी होंगी। अतः विचारक को न तो किसी प्रतिबद्ध साहित्यकार की आवश्यकता होगी और न ही किसी साहित्यकार को किसी विचारक के चिन्तन मंथन के निष्कर्ष के लिए प्रतिबद्ध होने की ही आवश्यकता पड़ती है।

यदि वर्तमान या अतीत के वैश्विक परिवेश परिदृश्य तथा परिस्थितियों की गहराई से जांच परख करें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि किसी प्रकार की प्रतिबद्धता अलगाव पैदा करती है और यही अलगाव काल कम से साम्प्रदायिक स्वरूप ग्रहण कर लेता है। चाहे इस श्रेणी में कम्युनिष्टों को लें

या संघ परिवारिकों को चाहे गायत्री परिवारियों को लें या गांधीवादियों का। प्रतिबद्धता एक घातक संकायक व्याधि है इसकी गंभीरता से पड़ताल की जानी चाहिए? अन्त में जहां तक साहित्य का समाज का दर्पण स्वयं को प्रमाणित करना है इसको रचनात्मक अनुक्रिया का सर्वांगीण ध्यान रखना पड़ेगा जिससे समाज बनता है। समाज बनता है वर्तमान काल के खण्ड में। कालखण्ड के भीतर समाज बनाने वाले कारक होते है व्यक्ति विचार और वस्तु और इन्हीं तीनों के अन्तर्सम्बन्धों की अर्न्तवस्तुओं की अनुक्रियाओं के रचनात्मक स्वरूप को निरूपित करने वाली कला की विधा को साहित्य कहा जाना चाहिए और ऐसा ही साहित्य समाज का दर्पण बन सकता है। जो है की वास्तविकता प्रकट करने वाला दर्पण। ऐसा साहित्य ही न तो कोई प्रतिमा बनाएगा और न ही कोई पंथ। न तो किसी चिंतन मंथन की प्रतिबद्धता का मोहताज। आपने विस्तार से प्रतिमा गढ़ने वाले तथा पंथ निर्माण करने वालों को जिस प्रकार रेखांकित किया है इस काल खण्ड में बेबाक अभिव्यक्ति के लिए साधुवाद।

उत्तर— मैंने न विचार को लंगड़ा कहा है न साहित्य को अन्धा। मैंने तो यही कहा है कि दोनों एक दूसरे के पूरक है और जब समाज में स्थापित होने का कम आता है तब न अकेला विचार स्थापित हो पाता है न स्थापित साहित्य की दिशा ठीक रह पाती है। विचार की स्थापना के लिए साहित्य अनिवार्य है और साहित्य के मार्गदर्शन के लिए विचार। विचार तत्व होता है और साहित्य प्रधान। इन दोनों के मिलन को मैंने अंधे और लंगड़े की मजबूरी के साथ जोड़ दिया। मैं अब भी मानता हूं कि विचार को यदि साहित्य का सम्बल न मिले तो विचार अंकुरित नहीं हो पायेगा और साहित्य को विचार की दिशा न मिले तो वह झाड़ झंखाड़ के रूप में अनावश्यक विस्तार कर लेगा।

आवश्यक नहीं कि एक ही व्यक्ति में दोनों न हों। प्रायः प्रत्येक व्यक्ति में दोनों गुण होते ही हैं किन्तु पहचान किसी एक गुण की प्रमुखता से होती है कि वह विचार प्रधान है या कला प्रधान। कला प्रधान व्यक्ति भी विचार शून्य नहीं होता। यदि हो जाए तो अनर्थकारी होगा और या तो उधार के विचार लेगा या किसी पेशे के रूप में प्रतिबद्ध होगा। आज ऐसा बड़ी संख्या में दिख रहा है।

(च) — श्री बैद्यनाथ चौधरी, बेगूसराय बिहार।

विचार— ज्ञानतत्व के द्वारा आपकी मौखिक सोच से परिचित होने का अवसर मिलता है। गांधी और भगत सिंह के नाम लेने वालों की गृद्धदृष्टि सत्ता पर है। न भगत सिंह की त्याग भावना किसी में है और न गांधी की सोच और कर्म से कोई जुड़ता है। पूरी राजनीति भोगमूलक है, राष्ट्र और समाज का नाम लेकर ठगपना है। इसको बदलने की आपकी छटपटाहट सही है पर बदलने का समीकरण नहीं बन रहा है। जनता भी अपने प्रतिनिधियों का अनुकरण कर क्षणिक लाभ के लिए आतुर हो गयी है। आप ज्ञानतत्व द्वारा विचारक्रांति के लिए सतत् सचेष्ट हैं। परिणाम भी आयेगा, पर अभी परिणाम दूर है, निकट नहीं। लोग वर्तमान स्थिति से ऊब रहे हैं। जरा यह ऊब और घनी हो जाए तो बदलने की प्रक्रिया तीव्र हो जाए। सत्ता लोकसेवकों से नियंत्रित होनी चाहिए, पर गांधी की कल्पना का लोकसेवक भी तो खड़ा होना चाहिए। गांधी की कसौटी का लोकसेवक खड़ा करने की आपकी सोच में क्या तरकीब है।

समीक्षा— मैंने गांधी और भगत सिंह के संबंध में समीक्षा करके मेरे लम्बे विचार मंथन को बौना सिद्ध कर दिया है। मैं आपके सूक्ष्म विवेचन से सहमत हूं कि भगत सिंह का त्याग और गांधी की सोच अद्वितीय है। आज जिनके पास न भगत सिंह का त्याग और न गांधी सोच, वे लोग इन दोनों के नाम पर दुकानें खोलकर दोनों के बीच के सूक्ष्म विवाद तक सीमित कर्म में लगे हुए हैं। जो लोग न भगतसिंह के समान शत्रु को मार सकते हैं वे गांधी को ढाल बना रहे है और जो न गांधी के समान मर सकते हैं वे भगत सिंह को ढाल बना रहे हैं और दोनों ही अपनी—अपनी सुरक्षा के लिए गाल बजा रहे हैं। आपके दो लाइन के विश्लेषण के लिए मैं आपका आभारी हूं।

सत्ता लोकसेवक नियंत्रित होनी चाहिए यह उचित नही। लोक सेवक निर्माण एक विपरीत प्रक्रिया है। यदि लोक सेवक बनाये जायेंगे तो अनेक धूर्त उसमें भी घुस जायेंगे। इसलिए पहले सत्ता लोक अर्थात् समाज के हाथों में जाएं। इसके बाद समाज में से लोक सेवक बनेंगे और तब लोक सेवकों को सत्ता पर नियंत्रण का अधिकार दिया जाएगा। इस समय तो सबका सिर्फ एक ही

कार्य है कि सत्ता को समाज तक पहुंचाकर सत्ता के अधिकार दायित्व, हस्तक्षेप, न्यूनतम कर दिये जावें।

(छ) – आचार्य पंकज, राष्ट्रीय अध्यक्ष लोक स्वराज्य मंच।

प्रश्न– आपके विचारों को मैं ध्यानपुर्वक पढ़ता हूँ। आपके विचार सुलझे हुए, भाषा सरल और तत्व तात्कालिक परिस्थितियों के समाधान के साथ जुड़ा होता है।

मैंने कई ज्ञानतत्व पढ़े। आर्थिक, पारिवारिक, सामाजिक, संवैधानिक आदि अनेक विषयों पर विचार गये। गांधी जी ने समय–समय की और उस समीक्षा के सारतत्व के रूप में ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त दिया। आप इस विषय पर लगातार चुप हैं अर्थात् आप पश्चिम के व्यक्तिगत् सम्पत्ति के सिद्धान्त से सहमत हैं इस संबंध में आपने सोचा ही नहीं। आप इस संबंध में वस्तुस्थिति से अवगत कराने की कृपा करें।

उत्तर– सारी दुनिया में व्यक्ति और समाज के बीच अधिकारों के संतुलन पर लम्बी बहस चलती रहती है। पश्चिम के लोकतंत्र में व्यक्ति को समाज से अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। जबकि साम्यवाद में समाज को व्यक्ति से अधिक। भारतीय संस्कृति में दोनों का संतुलन स्थापित हुआ था।

इसी तरह धन और राजनैतिक शक्ति के बीच भी विवाद चलता रहा। पश्चिम के लोकतंत्र ने राजनैतिक शक्ति के बीच भी विवाद चलता रहा। पश्चिम के लोकतंत्र ने राजनैतिक शक्ति को धन की अपेक्षा अधिक विध्वंसक घोषित किया और साम्यवाद ने धन को राजनैतिक शक्ति से अधिक। पश्चिम ने सम्पत्ति को व्यक्तिगत घोषित करके सम्पत्ति के सैद्धान्तिक स्वरूप को बिल्कुल इन्कार कर दिया। दूसरी ओर साम्यवाद ने सम्पत्ति को व्यक्तिगत अधिकार से बिल्कुल बाहर करके उसके व्याहारिक पक्ष को बिल्कुल इन्कार कर दिया। स्वाभाविक है कि व्यावहारिक पक्ष हमेशा ही उच्च सैद्धान्तिक पक्ष की अपेक्षा अधिक सहज सरल और सफल होता है। धीरे–धीरे सम्पत्ति के संबंध में पश्चिम का व्यक्तिगत सम्पत्ति का सिद्धान्त छा गया और साम्यवादी सिद्धान्त असफल हो गया।

पश्चिम ने एक स्पष्ट विचार दिया कि सम्पत्ति पर व्यक्ति का असीम अधिकार है। मार्क्स ने इसके ठीक विपरीत विचार दिया कि सम्पत्ति पर राष्ट्र का असीम अधिकार है। मार्क्स ने तो बहुत आगे बढ़कर सम्पत्ति पर व्यक्ति के अधिकार को शून्य तक घोषित कर दिया। गांधी जी ने बीच का मार्ग अपनाकर ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त दिया जिसके अनुसार व्यक्ति सम्पत्ति का उपभोग कर सकेगा किन्तु मालिक नहीं होगा। सम्पत्ति प्रत्यक्ष रूप से गांव की होगी जो अप्रत्यक्ष रूप से समाज का प्रतिनिधि है। पश्चिम ने कानून के द्वारा व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार को लागू कर दिया और साम्यवाद ने भी कानून के द्वारा ही उसे सरकारी बनाने का कानून लागू कर दिया। किन्तु गांधी जी वैसा नहीं कर सके। मैं नहीं कह सकता लागू करने के संबंध में उनकी क्या योजना थी लेकिन यह सच है कि उक्त सिद्धान्त को कभी कानून का सहारा नही मिल सका। गांधी हत्या के बाद तो वह सिद्धान्त ही चर्चा से बाहर हो गया।

मैंने सम्पत्ति अधिकार विषय पर बहुत सोचा। साम्यवाद का सम्पत्ति राष्ट्र की, का सिद्धान्त अव्यावाहारिक सिद्ध हो चुका था। पूंजीवादी देशों का सम्पत्ति व्यक्तिगत का सिद्धान्त समाज में अनियंत्रित आर्थिक असमानता का पर्याय बनकर शोषण में सहायक हो रहा था। गांधी जी का ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त स्पष्ट ही नहीं हो पाया। इसलिए सम्पत्ति पर व्यक्ति का या समाज का स्वामित्व तय करना अत्यन्त कठिन था। मैंने सोचा कि सिद्धान्त चाहे कितना भी अच्छा क्यों न हो, यदि लागू ही नहीं हो सकता तो उसका विपरीत प्रभाव होता है। इसी तरह कार्य कितना भी व्यावहारिक और आसान क्यों न हो, यदि शोषण का आधार है तो घातक होता है। इसलिए बीच का मार्ग ही उपयुक्त है।

मैंने अपने सामाजिक ढांचे में परिवार को भी संवैधानिक ईकाई माना है। परिवार को किसी अन्य व्यवस्था में संवैधानिक दर्जा प्राप्त नही किन्तु विकसित करके कम्यून शब्द की ओर खिसका दिया। परिवार की संवैधानिक परिभाषा इस तरह बनाई गई संयुक्त सम्पत्ति और संयुक्त उत्तरदायित्व के आधार पर एक साथ रहने हेतु सहमत व्यक्तियों का समूह। इस परिभाषा के अनुसार सम्पूर्ण सम्पत्ति पर परिवार का संयुक्त अधिकार होगा। व्यक्ति परिवार से पृथक होते समय उस परिवार से

सम्पत्ति लेकर अलग होगा, तथा नये परिवार में तत्काल सम्मिलित करेगा। व्यक्ति को व्यक्तिगत सम्पत्ति रखने का कोई अधिकार नहीं होगा। परिवार दो व्यक्तियों का भी बन सकता है। जब तक कोई व्यक्ति किसी परिवार में शामिल नहीं होता तब तक उसकी सम्पत्ति ग्राम सभा के पास सुरक्षित रहेगी। इस तरह हम लोगों ने व्यक्तिगत सम्पत्ति के सिद्धान्त को सीमित करने का प्रयास किया है। यह सिद्धान्त भले ही ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त से कम उपयोगी हो किन्तु व्यक्तिगत सम्पत्ति के सिद्धान्त से अधिक उपयोगी है। इसके अनुसार सम्पत्ति के विभाजन के मुकदमें बहुत कम हो जायेंगे, दहेज समाप्त हो जायेगा, महिलाओं को समान या विशेष अधिकार का विवाद नहीं रहेगा तथा सम्पत्ति के दुरूपयोग पर भी आंशिक रोक लगेगी। इस संबंध में लगभग दस वर्ष पूर्व मैने कई स्थान पर चर्चा की है। एक लेख गांधी, मार्क्स और मैं तो पूरा का पूरा इसी विषय पर है। भारत के प्रस्तावित संविधान में भी यह बात शामिल है। अभी एक दो वर्षो में इस विषय पर प्रश्न न आने से पंकज जी नहीं पढ़ सके इसका मुझे खेद है।

(ज) संविधान में उद्देशियका और उसका दुरूपयोग

आचार्य पाणिनी द्वारा बताई परिभाषा अनुसार समाज मनुष्याणां संघ अर्थात् समाज मनुष्यों का संघ होता है। संघ अर्थात् समाज मनुष्यों की सुरक्षा और न्याय के लिए जिस cell का गठन करता है उसे राज्य, शासन या सरकार कहते हैं। समाज राज्य को व्यवस्था के निमित्त कुछ अधिकार देता है जिनकी कुछ सीमाएं भी होती है। राज्य के अधिकतम अधिकारों की सीमाएं स्थापित करने वाले दस्तावेज को संविधान कहते हैं। इस तरह संविधान राज्य के अधिकतम और समाज के न्यूनतम अधिकारों की अन्तिम सीमाएं निर्धारित करने वाला दस्तावेज है। संविधान हमेशा समाज द्वारा या समाज के प्रतिनिधियों द्वारा तथा समाज द्वारा निर्मित प्रक्रिया अनुसार बनता है जो सामाजिक दस्तावेज होता हैं।

भारत जब स्वतंत्र हुआ उस समय गुलाम था और गुलामी की विशेष स्थिति में ही संविधान बनना शुरू हुआ। इसलिए राजनीतिज्ञों ने ही समाज का स्वयं–भू प्रतिनिधित्व किया। यह राजनीति और समाज के बीच मजबूरी थी कि अनुपालन पक्ष ही दोनों पक्षों का प्रतिनिधित्व करे। अनुपालक पक्ष ने समाज को वोट देने का अधिकार देकर अन्य सारे अधिकार अपने पास समेट लिये। यहां तक कि उसने संविधान में यह भी शामिल कर लिया कि वह जब चाहे दो तिहाई बहुमत से बिना दूसरे पक्ष के हस्तक्षेप या सलाह के ही संविधान में संशोधन भी कर सकता है। बड़ी कठिनाई से न्यायालय ने जबरदस्ती करके उसके असीमित अधिकारों में से संविधान की मूल भावना में संशोधन पर रोक का फरमान घुसा दिया, अन्यथा अनुपालक पक्ष तो अब तक न्यायालय के पक्ष से सहमत नहीं हैं यद्यपि न्यायालय ने अब तक पूरी तरह स्पष्ट नहीं किया है किन्तु संविधान का preamble ही उसका मूल स्वरूप कहा जा सकता है।

किसी भी संविधान का एक मूल ढांचा होता ही है। इस संक्षिप्त मूल तत्व में पूरे संविधान का उद्देश्य समाहित होता है। इसी उद्देश्य को लक्ष्य बनाकर संविधान का विस्तृत ढांचा तैयार होता है। अब तक भारतीय संविधान का preamble इस प्रकार है।

हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए, तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढसंकल्प होकर इस संविधान सभा में आज छब्बीस नवम्बर उन्नीस सौ उन्चास को एतद द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

इस उद्देशियका के पांच भाग हैं। 1– एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए। 2– समस्त नागरिकों को सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक

न्याय। 3– विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता। 4– प्रतिष्ठा और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने। हम इन पांचों पर अलग–अलग विचार करें। पहले भाग में समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष शब्द पहले नहीं थे, किन्तु बाद में समाज को शब्दजाल में फंसाने के लिए शामिल किये गये। जब उद्देश्यिका में विश्वास, धर्म उपासना की स्वतंत्रता भी शामिल है और प्रतिष्ठा तथा अवसर की समानता भी तब इन दो शब्दों घुसाने का क्या उद्देश्य था? संविधान में जब ये दो शब्द नहीं थे तब धर्म निरपेक्षता और समाजवाद में क्या बाधा आ रही
थी। संविधान में समाजवाद शब्द को घुसड़ने के बाद भी भारत कितना समाजवादी बना और संविधान बिना संशोधित हुए ही कैसे समाजवादी स्वरूप से पूंजीवादी स्वरूप में बदल गया? ये कुछ ऐसे प्रश्न है जो सिद्ध करते हैं कि इन दो शब्दों को किसी अन्य उद्देश्य से जानबूझ कर संविधान में शामिल किया गया जिनका संवैधानिक दृष्टि से कोई प्रभाव नहीं था। इस अंश में सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, तथा लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए शब्द लिखा है। प्रश्न उठता है कि संविधान लागू हो जाने के बाद भारत सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य तो बन ही गया फिर बनाने के लिए शब्द का क्या औचित्य है? क्या इतने वर्ष बाद भी हम भारत को सम्पूर्ण प्रभुता, सम्पन्न, लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने के लिए प्रयत्नशील है? ये तीन शब्द तो भारत शब्द के पूर्व स्थापित करके इस तरह होने चाहिए सम्पूर्ण प्रभुता सम्पन्न, लोकतंत्रात्मक गणराज्य भारत के लोग संभव है कि हम गुलाम होने के कारण ऐसी भाषा का उपयोग किये हों। यदि इसका उद्देश्य गणराज्य भारत बनाने से था तो हमें समीक्षा करनी होगी कि हम इस मामलें में कितना आगे–आगे गये या पीछे। मैं तो यही मानता हूं कि इसकी कोई समीक्षा संभव नहीं है व 1 सौ परिवारों का संसद में प्रतिनिधित्व है। यह प्रतिनिधित्व लगातार घटता जा रहा है। व्यक्ति और शासन के बीच सत्ता संतुलन का अनुपात भी लगातार व्यक्ति से घटकर शासन की दिशा में बढ़ रहा है। नितान्त व्यक्तिगत या पारिवारिक मामलों में भी कानूनों का हस्तक्षेप लगातार बढ़ता जा रहा है। राजनैतिक न्याय राजनेताओं तक सिमट गया है और व्यक्ति या समाज इस दिशा में लगातार कमजोर होते जा रहे है।

तीसरा सूत्र है विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, उपासना की स्वतंत्रता। इसकी समीक्षा में अभिव्यक्ति के मामले में हम ठीक–ठाक है। विश्वास के मामले में भी गड़बड़ नहीं किन्तु धर्म और उपासना के मामले में उद्देश्यिका में नागरिक शब्द है और हमने नागरिक शब्द के स्थान पर धार्मिक साम्प्रदायिक संगठनों को आधार बना दिया। हिन्दू कोड बिल ने संगठनों को आधार बनाने की जो भूल की वह आज भी जारी है। भारत लगातार साम्प्रदायिक संगठनों की प्रतिस्पर्धा में नागरिक के विश्वास के स्थान पर संगठनों के तुष्टीकरण में लग कर धर्म निरपेक्षता की जगह तुष्टीकरण की खतरनाक राह पर चल पड़ा है। स्वतंत्रता के तत्काल बाद की अपेक्षा आज कई गुना अधिक साम्प्रदायिकता बढ़ी है। चौथे मुद्दे में प्रतिष्ठा और अवसर की समानता शब्द लिखे है। इसकी हम समीक्षा करे। सर्वाधिक असफलता इसी क्षेत्र में मिली है। कुल मिलाकर प्रतिष्ठा भी बढ़ी है और अवसर भी। किन्तु न प्रतिष्ठा में समानता बढ़ी है न अवसर में इसके विपरीत दोनों ही क्षेत्रों में असमानता बढ़ी है। श्रम, बुद्धि और धन के बीच धन की प्रतिष्ठा बहुत अधिक बढ़ी है और बुद्धि की भी बहुत बढ़ी है किन्तु श्रम की नहीं बढ़ी है। शिक्षा और सस्ती कृत्रिम ऊर्जा को प्रगति का आधार बनाया जा रहा है। समता शब्द को राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयोग किया जा रहा है। कुछ दलों ने तो वाकायदा साम्य या समाज के नाम से वाद खड़ा करके राजनैतिक दल ही बना लिये हैं जबकि यही दल श्रम की अपेक्षा शिक्षा और कृत्रिम ऊर्जा को भी प्रगति का मुख्य आधार घोषित करने में आगे–आगे रहते हैं पांचवा मुद्दा है व्यक्ति की गरिमा, और राष्ट्र की एकता, अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने का। इस मुद्दे में व्यक्ति शब्द है जबकि ऊपर के चार मुद्दों में नागरिक शब्द है। यह एक विशेष फर्क है। व्यक्ति की गरिमा बढ़ी है या घटी है यह विवादास्पद मुद्दा है। यदि परिवार, गांव, समाज से तुलना करें तो परिवार गांव समाज व्यवस्था कमजोर होकर व्यक्ति मजबूत हो रहा है किन्तु यदि संघ संगठन समूह या गिरोह से तुलना करें तो व्यक्ति लगातार कमजोर होकर संघ संगठन या समूह या गिरोह मजबूत हो रहे हैं। दूसरे पर अपनी

बात स्थापित करने में हिंसा की बढ़ती प्रवृत्ति व्यक्ति की गरिमा के कम होते जाने का प्रत्यक्ष उदाहरण है। यदि हम राष्ट्र की एकता अखण्डता स्थापित करने वाली बंधुता के बढ़ने की बात करें तो वह भी लगातार टूट रही है। भारत में खुलेआम तीन प्रकार के दलाल सक्रिय है।

1– पश्चिम के 2– चीन रूस के 3– इस्लामिक देशों के। तीनों दलाल विदेशों से धन लेकर खुलेआम समाज को तोड़ने में सक्रिय हैं। राष्ट्र की एकता और अखण्डता तो तब मजबूत होगी जब बंधुता बढ़ेगी। यह बंधुता लगातार टूट रही है। ऐसा लगता है कि हमारे संविधान का preamble बनाते समय भूल हुई preamble से सुरक्षा शब्द को भी बाहर रखा गया और परिवार ग्राम की व्यवस्था को भी। यदि संविधान की उद्देश्यिका में लोकतंत्र के स्थान पर लोक स्वराज्यात्मक गणराज्य शब्द होता तो सारा ढांचा ही बदल जाता अब साठ वर्ष बाद हम संविधान पर गंभीर विचार मंथन कर रहे हैं। उसके preamble में पांच बातों का समावेश आवश्यक प्रतीत होता है।

1– लोक स्वराज्य की गारंटी। ईकाई को उसके ईकाइगत निर्णय की स्वतंत्रता।

2– अपराध नियंत्रण की गारंटी अर्थात् प्रत्येक ईकाई को ईकाइगत निर्णय की अबाध स्वतंत्रता की सुरक्षा की गारन्टी।

3– आर्थिक असमानता में कमी।

4– श्रम मूल्य और प्रतिष्ठा में वृद्धि।

5– समान नागरिक संहिता।

इन पांचों आधारों की भाषा संविधान विद् तैयार कर सकते हैं किन्तु संविधान का मूल ढांचा यदि इस आधार पर बनाया जावे तो भारत की सभी समस्याओं का समाधान का मार्ग प्रशस्त हो सकता है। आवश्यकता यह है कि संविधान preamble पर बहस के माध्यम से संविधान के मूल ढांचे पर विचार मंथन हो और मूल ढांचा बिल्कुल स्पष्ट हो। उसमें अकेन्द्रीयकरण और सुरक्षा के विचारों को प्राथमिकता के स्तर पर शामिल किया जाव।

(झ) <u>संविधान मंथन सभा की अपील एवं सूचनाएं</u>

अपने देश के इतिहास में सत्ता परिवर्तन में सबसे ताजा दो उदाहरण हमारे सामने हैं, प्रथम उदाहरण 1947 में देश की स्वतंत्रता तथा द्वितीय 1977 में आपातकाल के बाद हुए आम चुनाव में इन्दिरा सरकार की पराजय।

वैसे तो हजारों–हजार वर्ष के इतिहास में सम्पूर्ण भारत पर कभी भी विदेशी शासन नहीं रहा, कहीं न कहीं स्वतंत्र देशी राज्य अस्तित्व में रहा, और अलग–अलग क्षेत्रों में स्वाधीनता के लिए निरन्तर संघर्ष चलता रहा। इस स्वाधीनता संघर्ष के अन्तिम दौर में जनता महात्मा गांधी के पीछे लामबन्द थी तथा गांधी ग्राम राज्य के द्वारा रामराज्य का सपना स्वयं देख रहे थे और देश की जनता को दिखा रहे थे, परन्तु हुआ क्या?

देश की सत्ता गोरे अंग्रेजों के हाथ से निकलकर काले अंग्रेजों के हाथ में चली गयी, सत्ता परिवर्तन हुआ, व्यवस्था वही बनी रही, सरकार अंग्रेजों के कायदे–कानून पर चलती रही। सन् 1973 में जब देश की निरंकुश इन्दिरा सरकार ने संविधान को ताक पर रखकर, आम जनता के मौलिक अधिकारों का हरण किया तथा आपातकाल लागू किया तो लोक नायक जय प्रकाश नारायण के नेतृत्व में चल रहे सम्पूर्ण क्रांति अभियान के परिणाम स्वरूप पैदा हुई नवजात जनता पार्टी आम जनता ने देश की सत्ता सौंप दी। परन्तु फिर वही इतिहास दोहराया गया, जिस तरह बापू गांधी के तथा कथित चेलों ने सत्ता सुख में डूबकर वही सब कुछ किया जिसे बापू नहीं चाहते थे। सम्पूर्ण क्रांति वाले लोकनायक के तथा कथित अनुयायियों ने भी जीते जी जय प्रकाश नारायण की कल्पना के विरूद्ध राजकाज कर उन्हें मार दिया। सत्ता बदली व्यवस्था वही चली आ रही है।

ज्ञानतत्व के सम्पादक, विचारक श्री बजरंगमुनि उर्फ बजरंगलाल अग्रवाल द्वारा संचालित व्यवस्था परिवर्तन आन्दोलन से जुड़े विचारकों का मानना है कि सत्ता परिवर्तन से किसी भी समस्या का स्थायी समाधान नहीं निकल सकता है, सभी समस्याओं के समाधान के लिए व्यवस्था परिवर्तन आवश्यक है। व्यवस्था परिवर्तन होगा संविधान संशोधन से और संविधान संशोधन के लिए

आवश्यक है समाज में इन 23 विषयों पर विचार मंथन 1– व्यवस्था परिवर्तन क्यों? 2– संविधान संशोधन क्यों? 3– संविधान की उद्देश्यिका 4– व्यक्ति के मौलिक अधिकार 5– अपराध और अपराध नियंत्रण 6– केन्द्र सरकार के अधिकार, दायित्व तथा हस्तक्षेप सीमाएं 7– परिवार और उसकी संरचना 8– गांव, जिला, प्रदेश और संघ समाज की संरचना और कार्य प्रणाली। 9– संसद और उसका विधायी कार्य 10– राष्ट्रपति और उसका विधायी कार्य 11– न्याय पालिका 12– अर्थ व्यवस्था और कर प्रणाली 13– समान नागरिक संहिता और सामाजिक न्याय 14– श्रम मूल्य वृद्धि 15– वाह्य सुरक्षा और विदेश नीति 16– संविधान संशोधन न्याय 17–चुनाव प्रणाली, फांसी की सजा 18– आपातकाल और शासन की सीमाएं 19– निर्वाचित जन प्रतिनिधियों की वापसी 20– भाषा, परिवार नियोजन और शस्त्र धारण 21– आर्थिक असमानता पर नियंत्रण 22– संशोधित संविधान का भ्रष्टाचार पर प्रभाव 23– संशोधित संविधान का सामाजिक चरित्र पर प्रभाव। संविधान संशोधन का विषय सिर्फ राजनेताओं के जिम्मे छोड़ना उचित नहीं है इसलिए इस विचार मंथन में समाज के सभी वर्गो को शामिल करना आवश्यक है। संविधान मंथन सभा समयबद्ध और परिणाम मूलक योजना के अन्तर्गत यह काम शुरू की है। पूरे संविधान की चर्चा को अब तक तेइस भागों मे बांटा गया है। सम्पूर्ण देश के प्रमुख विद्वानों द्वारा इन बिन्दुओं पर लिखित सुझाव आमन्त्रित है जिन्हें ज्ञानतत्व में प्रकाशित कर सभी के पास टीका–टिप्पणी के लिए भेजा जाएगा। एक वर्ष तक चर्चा–परिचर्चा का माध्यम ज्ञानतत्व रहेगा। एक वर्ष बाद योजना बनाकर एक माह तक प्रतिदिन एक–एक विषय पर एक साथ बैठकर विस्तार से चर्चा की जायेगी। ज्ञानतत्व द्वारा वर्ष भर में प्रकाशित सभी विद्वानों के विचार बैठक में भाग लेने वाले विद्वानों के मुद्रित रूप में लगातार उपलब्ध करवाये जाते रहेंगे।

उपरोक्त संविधान सभा की बैठक में आप अपने अनुकूल विशेष चयन करके चर्चा में भाग लेने का कष्ट करें इन विषयों पर अपने विचार लिखकर भेंजे। अन्य किसी भी जानकारी के लिए दूरभाष पर भी सम्पर्क किया जा सकता है। भारतीय संविधान पर बजरंग मुनि जी ने भी गहन मंथन किया है। वे भी ज्ञानतत्व के माध्यम से अपने विचार भेजते रहेंगे, किन्तु वे विचार उनके व्यक्तिगत विचार माने जायेंगे सभा के विचार नहीं क्योंकि सभा का संविधान संबंधी कोई अपना निष्कर्ष नहीं है। सभा तो भारतीय संविधान पर सामाजिक विचार मंथन का माध्यम मात्र है। इसलिए ज्ञानतत्व में प्रकाशित मुनि जी या अन्य विद्वानों के विचारों पर स्पष्ट टीका–टिप्पणी विचार मंथन में सहायक होगी। इस श्रृंखला की पहली कड़ी के रूप में मुनि जी के विचार इसी अंक में आपके विचारार्थ जा भी रहे हैं।

राष्ट्र निर्माण के इस महान यज्ञ में आपकी हिस्सेदारी की प्रतीक्षा रहेगी।

नोटः– संविधान सभा की चर्चा–परिचर्चा में भाग लेने वाले विद्वानों के भोजन एवं निवास की पूरी व्यवस्था आयोजन समिति की होगी।

श्री रमेश राघवजी, 9868147029
राष्ट्रीय अध्यक्ष, संविधान सभा
बी–56 जैन मन्दिर गली, शकरपुर नई दिल्ली–92

विशेष अपील

अपने एक वर्ष के कार्यो की समीक्षा और अगले वर्ष की योजना पर चर्चा हेतु सोलह अक्टूबर को दिल्ली में प्रातः साढ़े नौ बजे से रामलीला मैदान के पीछे हनुमान वाटिका के सामने पंचायती धर्मशाला में होगी। पूर्व में आने वाले साथी शकरपुर कार्यालय में आ सकते हैं। निवास भोजन व्यवस्था दोनों जगह होगी। आप बैठक में सादर आमंत्रित हैं। सत्रह तारीख को दस बजे से चार बजे तक जन्तर–मन्तर पर लोक स्वराज्य मंच तथा श्रम शोषण मुक्ति अभियान का धरना प्रदर्शन रखा गया है। उसमें भी आपकी सहभागिता उत्साह वर्धक होगी।